The Academic
International Journal of Multidisciplinary Research

An Online Peer Reviewed / Refereed Journal
Volume 2 | Issue 2 | February 2024
ISSN: 2583-973X
Website: www.theacademic.in

'काली बर्फ़' नाटक का विवेचन

Dr. Sujata N. Magadum*

Principal & Hindi Associate Professor, Government First Grade College,

Sadalaga Dist: Belagavi, Karnatak

ARTICLE DETAILS

Research Paper

Keywords :

नाटक, आतंकवाद, विस्थापन, त्रासदी, समस्या, विषमता, कश्मीर, अमानवीय

ABSTRACT

मीरा कांत द्वारा लिखित नाटक 'काली बर्फ' आतंकवाद, विस्थापन और मानवीय त्रासदी को दर्शाने वाला एक सशक्त आधुनिक नाटक है। यह नाटक कश्मीर की पृष्ठभूमि पर आधारित है और वहां के तत्कालीन यथार्थ और विस्थापन के दर्द को एक परिवार की कहानी के माध्यम से उजागर करता है। नाटक के केंद्र में आतंकवाद के कारण उत्पन्न हुई विस्थापन की समस्या और उससे उपजा गहरा दर्द है। यह नाटक कश्मीर की स्थिति को दर्शाता है, जहाँ शांतिपूर्ण जीवन अचानक अनिश्चितता और खौफ में बदल जाता है। यह नाटक कश्मीर से विस्थापित लोगों की पीड़ा को दर्शाता है जो अपनी ही जमीन पर अजनबी हो जाते हैं। नाटक के पात्रों के माध्यम से विस्थापन के कारण उत्पन्न मनोवैज्ञानिक घुटन, असंतोष और यौन कुंठाओं का चित्रण किया गया है। नाटक के अंत में, पात्र निराशा से बाहर निकलकर सकारात्मकता की ओर बढ़ते हैं, जो एक नई उम्मीद की किरण को दर्शाता है। नाटक में समाज की रूढ़ियों और विषमताओं, विशेषकर विधवा के प्रति समाज के दृष्टिकोण को भी उठाया गया है। 'काली बर्फ' एक विरोधाभासी प्रतीक है। बर्फ जो पवित्रता और ठंडक का प्रतीक है, यहाँ आतंकवाद के कारण 'काली' हो गई है। यह कश्मीर की स्थिति का ही प्रतीक है। नाटक आधुनिक शिल्प-विधान से सुसज्जित है। नाटक की भाषा और संवाद विस्थापन के दर्द को गहराई से व्यक्त करते हैं। 'काली बर्फ' नाटक मात्र एक कहानी नहीं है, बल्कि यह अपने समय के एक बड़े सामाजिक-राजनीतिक सच को उजागर करता है। यह विस्थापन और आतंकवाद के

*Corresponding Author

अमानवीय परिणामों को पाठकों और दर्शकों के सामने रखता है, जो आज भी प्रासंगिक है।

"काली बर्फ़" मीराकांत द्वारा लिखित प्रसिद्ध नाटक है जो वाणी प्रकाशन से प्रकाशित है । प्रस्तुत नाटक विस्थापितों की समस्या को लेकर लिखा गया है । काली बर्फ़ के सन्दर्भ में कहा जा सकता है कि सर्वप्रथम इस नाटक का प्रकाशन जनवरी-मार्च 2004 में 'पश्यन्ती' पत्रिका में हुआ था। अगले वर्ष यानी फ़रवरी 2005 में श्री मुश्ताक काक के निर्देशन में इसे श्रीराम सेंटर, दिल्ली के रंगमंडल ने मंचित किया। रंगमंडल ने इसकी आठ सफल प्रस्तुतियाँ दीं । कुछ वर्ष बाद यानी 2011 में जम्मू-कश्मीर राज्य के कश्मीर दूरदर्शन (डी.डी. कश्मीर) पर यह तेरह कड़ियों के धारावाहिक के रूप में प्रसारित हुआ। देश के कुछ विश्वविद्यालयों व महाविद्यालयों के पाठ्यक्रम में सम्मिलित होने के बाद अब यह नाटक अपनी एक अलग अस्मिता के साथ पाठकों का ध्यान आकर्षित कर रहा है।

इस नाटक के केन्द्र में आतंकवाद से उपजा विस्थापन और उसका दर्द है जो आज विश्व की एक विकराल समस्या है। दुनियाभर में करोड़ों लोग विस्थापित हैं और यह अमानवीय स्थिति लगातार अपने पाँव पसारती जा रही है। नाटक का आरंभ टाढ़ाजी तथा उनकी बेटी सारिका के संवादों से होता है । वे विस्थापित होकर दिल्ली में बसे हुए हैं । नाटक फ़्लैशबैक में चलता है । इस नाटक के प्रमुख पात्र पंडित श्रीकंठ वौखलू (टाढ़ाजी) हैं । उनकी दो बेटियाँ रूपा तथा सारिका हैं । राज रूपा का पति और टाढ़ाजी का दामाद है । शिबन तथा गोशा क्रमश: टाढ़ाजी का बेटा तथा उनका अनाथ पोता है । चमन सारिका का मंगेतर तथा सुहैल रूपा का सहपाठी है ।

टाढ़ाजी का दर्द जब-तब झलकता दिखाई देता है । वे पूरी तरह से अपनी जड़ों से जुडे हुए हैं । इसलिए उनमें कश्मीर वापस लौटने की आस दिखाई देती है । उनका परिवार आतंकवाद में झुलसा हुआ है । वे अपने बेटे और बहू को इस हादसे में खो चुके हैं ।

कश्मीर में आतंकवाद के पनपने के साथ ही अल्पसंख्यकों को वहाँ से खदेड़ने की कोशिश शुरु हो चुकी थी । नौबत यहाँ तक आयी थी कि उनको सरेआम मारा जा रहा था । उसी भय के चलते टाढ़ाजी का परिवार न चाहते हुए भी विस्थापित होने को मजबूर हो जाता है । सारिका का मंगेतर आतंकवादियों के खिलाफ़ अपनी आवाज़ बुलन्द कर रहा था, अत: उसे भी मार दिया जाता है । रूपा का सहपाठी सुहैल आतंक के भय से वहाँ से निकल जाता है । टाढ़ाजी का बेटा एम.बी.बी.एस के अंतिम वर्ष में पढ़ रहा होता है । पढ़ाई बीच में छोड़कर पेपर बांटने के लिए वह विवश हो जाता है । राज ने अपनी सारी जमापूंजी खर्च कर जो घर बनाया था हालातों के चलते उस घर को छोड़कर जम्मू जाकर बसना पड़ता है । आतंकवाद का परिणाम इस क़दर था कि हर कोई किसी-न-किसी प्रकार से पीड़ित नज़र आ रहा था ।

अपनी बेटी के साथ गुल्ला की जबर्दस्ती शादी करने की बात से भयभीत होकर डा. नसीर भी कश्मीर से निकलते हैं ।

टाढ़ाजी को एक आस बनी हुई है कि हालात सुधरेंगे । शिबन बतलाते हैं कि ऐसा कुछ होनेवाला नहीं है, कोई कदम नहीं उठाया गया तो हालात जस के तस बेने रहेंगे । विस्थापितों की समस्या को कोई गंभीरता से लेता नहीं है । लेखिका ने राज के माध्यम से राजनीतिक इच्छाशक्ति की कमी की ओर हमारा ध्यान इन वाक्यों के माध्यम से आकृष्ट करती हैं - "पर कुछ नहीं टाढ़ाजी पर कुछ नहीं -------- एलेक्शन होते हैं -------एक सरकार जाती है दूसरी आती है------पूरी वादी पोस्टरों से दब जाती है------रंग-बिरंगे वादे भी बस यादों की शक्ल ले लेते हैं-------ऐसे में किस पर भरोसा करें-------किस तरफ़ उम्मीद से देखें बताईए-------।"[1]

विस्थापित पूरी तरह से बिखरे, टूटे तथा हारे हुए-से दिखाई देते हैं । राज के शब्दों में -"शायद आप ही ठीक कहते हो पर मुझे तो कोई हल नजर नहीं आता-------जो कुछ भी हो हमारी जिन्दगियाँ तो बिखर गयीं---------- अब तो जिन्दगी के यहाँ-वहाँ बिखरे रेशों को समेटकर जी रहे हैं------खुशनुमा हिस्सा तो वहीं छूट गया-----सुकून भी वहीं छूट गया----वहीं छूट गया सबकुछ-----वहीं-----"[2]

डा. नसीर भी आतंकवाद से त्रस्त हैं । जब उन्हें गुल्ला के मारे जाने की खबर मिलती है तो वे कश्मीर लौटने के लिए तैयार हो जाते हैं । वादी के हालात को वे इस प्रकार बयान करते हैं - " नहीं राज, अफ़सोस मुझ पर नहीं पूरी वादी के हालात पर होना चाहिए । शक्ल बदल गयी हमारी वादी की----ए.के.फोर्टीसेवेन जात नहीं देखती----सिर्फ़ दहशत का खून से पुता मुस्कुराता चेहरा देखना चाहती है------सिर्फ़ दहशत का चेहरा------|"[3]

शिबन पूरी तरह से हारा, टूटा हुआ है । उसे यह विश्वास हो गया है कि हम कश्मीर नहीं जायेंगे । इसीलिए वह कहता है -" आप ये सपने देखना बंद करें । घर ! कैसा घर ? किसका घर ? घर लौट जायेंगे । बहुत हुए ये टनल पार के सपने । कुछ नहीं है अपना वहाँ । टनल के इस ओर हैं हम----उस पार------!"[4]

लेखिका को लगता है कि बर्फ़ काली नहीं हुई , उसकी सफेदी अभी भी लोगों के मन में बरकरार है । यानी विस्थापित कश्मीरियों ने वहाँ लौटने की आस नहीं छोड़ी है । बर्फ़ का यह दूर से दिखनेवाला कालापन ऊपर से उँडेला गया रंग है, सत्प्रयासों की बारिश से निकट भविष्य में जिसके धुल जाने की उम्मीद का सपना हर कश्मीरी के दिल में बसी है ।[5]

उपसंहार :

नाटक में लेखिका का आशावादी स्वर तो उभरकर आता है पर आज के दिन भी परिस्थितियाँ ज्यौं की त्यौं बनी हुई हैं । टार्गेट किल्लिंग आज भी देखने को मिल रहा है । "आज लगभग दो दशक बाद भी यह नाटक अपनी प्रासंगिकता की ज़मीन पर मज़बूती से खड़ा है। यह उन स्थितियों का नाटक है जिसमें कश्मीर की बेबस आँखों के सामने दम तोड़ती जीवन-संस्कृति है, घायल अस्मिता है। इसमें अपनी जड़ों से उखड़ने का दर्द ढोते परिवार हैं तो घाटी में आतंकवाद के साये में डरी-सहमी-मजबूर ज़िन्दगी जीते लोग भी हैं। अपनी समग्रता में जो सामाजिक, भौगोलिक, सांस्कृतिक जीवन और मनोजगत की तबाही है। मगर साथ ही मन में एक ऐसा खुशनुमा अतीत है, कश्मीरियत है जिससे उम्मीद और सम्भावनाओं के सपने बराबर बने रहते हैं।"[6] वर्षों से अपने ही देश में इन लोगों को विस्थापन का जीवन जीना पड़ रहा है जो इसका शिकार बने हुए हैं । यह बहुत बड़ा दुर्भाग्य है । संसार के किसी भी देश में इस प्रकार की समस्या नहीं होगी । दुख की बात यह है कि एक समुदाय विशेष की ही आतंकवादियों द्वारा हत्यायें हो रही हैं । उसका नियंत्रण या समाप्ति असंभव तो नहीं किंतु वहाँ पर भी राजनीतिक इच्छाशक्ति की कमी दिखायी देती है । इस पर आत्ममंथन तथा आत्मचिंतन होना जरूरी है ।

सन्दर्भ सूची:

1 काली बर्फ़ नाटक पृ.सं 134

2 काली बर्फ़ नाटक पृ.सं 134

3 काली बर्फ़ नाटक पृ.सं 154

4 काली बर्फ़ नाटक पृ.सं 157

5 काली बर्फ़ नाटक की भूमिका से

6 काली बर्फ़ नाटक की भूमिका से